25 जून 1975 :

बंदी बना लोकतंत्र

Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation

25 जून 1975 :

बन्दी बना लोकतंत्र

संकलनकर्ता

शिवानन्द द्विवेदी

(रिसर्च फेलो, डॉ श्यामा प्रसाद मुकर्जी रिसर्च फाउंडेशन)

Cover Design & Layout

Vikas Saini

डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी

रिसर्च फाउंडेशन

अनुक्रमणिका

क्र.सं	लेख	पेज न.
01	प्राक्कथन	4
02	लोकतंत्र का काला दिन **– अमित शाह**	7
03	आपातकाल असत्य, अहंकार, अराजकता की प्रतिमूर्ति थी **– राम लाल**	14
04	'इमरजेंसी' का दुःस्वप्न **– राम बहादुर राय**	17
05	WHEN CIVILISED FREEDOM DIED **– Dr. Anirban Ganguly**	20
06	NEVER AGAIN, NEVER AGAIN, NEVER AGAIN **– Dr. A. Surya Prakash**	23

प्राक्कथन

जून महीने की २५ तारीख को भारतीय लोकतंत्र के काला दिवस के रूप में आज भी याद किया जाता है। यही वो तारीख है जब एक नए-नवेले लोकतंत्र को पारिवारिक तानाशाही की सियासत ने कलंकित किया था। २५ जून को आधी रात में जब तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी देश में आपातकाल थोप रहीं थी तब हमारा लोकतंत्र महज ढाई दशक पुराना हुआ था। आपातकाल के दौरान न सिर्फ लोकतंत्र की हत्या हुई थी बल्कि संविधान के मूल अर्थात उसकी प्रस्तावना को भी तार-तार करने की हर कोशिश को असंवैधानिक ढंग से अंजाम दिया गया था। संविधान के अनुच्छेद ३९ से ४२ तक उस समय की तानाशाह सरकार ने मनमाने संशोधन किये। इसी दौरान संविधान की प्रस्तावना में 'सेक्युलरिज्म' शब्द भी जोड़ा गया। इस पूरे मसले को जानने के लिए यह देखना जरूरी होगा कि आखिर संविधान की प्रस्तावना में ये शब्द जुड़े कैसे और इनको जोड़ने की प्रक्रिया क्या रही। दरअसल जब २६ जनवरी, १९५० को भारत का संविधान लागू हुआ था, उस दौरान प्रस्तावना में लिखा था, 'हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को आत्मर्पित करते हैं!' लेकिन संविधान लागू होने के ढाई दशक बाद जब तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने देश पर अपनी तानशाही का आपातकाल थोपा था और देश के सभी गैर-इंदिरा समर्थक नेता जबरन जेल में ठूंस दिए गए थे, तभी सन् १९७६ में इंदिरा गांधी ने संविधान की मूल प्रस्तावना में असंवैधानिक ढंग से छेड़-छाड़ करते हुए 'सेक्युलर' व 'समाजवादी' सहित तीन शब्दों को जोड़ दिया। दरअसल भारत के संविधान की प्रस्तावना में हुई यह छेड़-छाड़ न तो जनता की मांग थी और न ही देश की जरूरत ही थी। यह अवैध संशोधन पूरी तरह से तानाशाह इंदिरा गांधी की जिद और सियासी स्वार्थ की परिणति था। बड़ा सवाल यह है कि जब देश आजाद हुआ और संविधान सभा ने संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष डा. भीमराव अम्बेडकर एवं राजेन्द्र प्रसाद सरीखे लोगों के नेतृत्व में संविधान निर्माण शुरू किया, तब भी उन्हें इन शब्दों की जरूरत प्रस्तावना में महसूस नहीं हुई थी। हालांकि तब नेहरू व जिन्ना की सियासी जिद ने देश को मजहब के नाम पर बांट जरुर दिया था, बावजूद इसके भारत के सामाजिक चरित्र व संस्कृति को 'सेकुलर' शब्द की जरूरत नही पड़ी थी। ..तो क्या ऐसा कहा जाय कि वे संविधान निर्माता 'गैर-सेक्युलर' थे? क्या २६ जनवरी, १९५० से लेकर १९७६ तक भारत एक 'गैर-सेक्युलर स्टेट' था, जो इन शब्दों को जोड़ देने मात्र से 'सेक्युलर' हो गया? आखिर इस संशोधन का निहितार्थ क्या था? सभी जानते हैं कि आपातकाल के

दौर में इंदिरा गांधी ने लोकतंत्र का गला घोंटते हुए संविधान के ४२वें संशोधन के तौर पर 'सेकुलरिज्म' एवं 'समाजवाद' शब्दों को संविधान की प्रस्तावना में जोड़ दिया था। दरअसल वह इंदिरा गांधी की तानाशाही का दौर था। चूंकि हर तानाशाह का उद्देश्य होता है कि वह विरोध के स्वरों को दबा दे एवं आम जनमानस से अपने बारे में अच्छा दृष्टिकोण प्राप्त करे, इसलिए इंदिरा गांधी का उद्देश्य भी यही था। अगर देखा जाय तो ४२वें संशोधन में संविधान की प्रस्तावना में इन दो शब्दों को जोड़ने के अलावा भी बहुत बड़ा हिस्सा बदल दिया गया था। ऐसे समय में जब विपक्ष नहीं हो, कोई बहस न हुई हो, तो संविधान की प्रस्तावना को बदल देना पूरे संविधान के साथ खिलवाड़ कहा जाएगा। हालांकि जब जनता पार्टी की सरकार बनी तो उसने ४५वें संशोधन से आपातकाल के दौरान हुए कई संशोधनों को बदल दिया, लेकिन प्रस्तावना में हुए संशोधन को नहीं बदला। उन्हें इसे भी बदल देना चाहिए था! वैसे इन दो शब्दों को इंदिरा गांधी ने अनावश्यक ही जोड़ा था, इनकी कोई जरूरत नहीं थी। हमारे संविधान में समानता व सर्वधर्म समभाव पहले से है। इस पर संविधान निर्माण के दौरान भी चर्चा हुई, लेकिन इसकी जरूरत नहीं महसूस की गयी थी।

दरअसल भारतीय संविधान में यह संशोधन ही शक्ति का बेजा इस्तेमाल करके एवं लोकतंत्र को हाशिये पर रखकर किया गया था। चूंकि अपनी खिसकती राजनीतिक जमीन एवं देश की राजनीति में उठ चुके कांग्रेस-विरोधी स्वरों का भान इंदिरा गांधी को हो चुका था, उन्हें इस बात का आभास भी हो चुका था कि अब देश में कांग्रेस की राजनीतिक विचारधारा के सामानांतर एक प्रतिवादी विचारधारा का विकास हो रहा है, लिहाजा उन्होंने अपने राजनीतिक हितों के भविष्य को सुरक्षित करने के लिए इन दोनों ही शब्दों को आपातकाल के उस विपरीत दौर में भी संविधान में शामिल करा दिया। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति के लिहाज से देखा जाये तो इंदिरा गांधी द्वारा किये गये इन संशोधनों की आड़ में कहीं न कहीं कांग्रेस आज तक 'सेकुलरिज्म' की राजनीति करती आई है। ऐसा नहीं है कि ४२वें संशोधन के तहत महज यही एक बदलाव हुआ। इसके अलावा भी केंद्र की तानाशाही से जुड़े कई संशोधन एवं न्यायपालिका की शक्तियों में हस्तक्षेप की कोशिश भी तब इंदिरा गांधी सरकार द्वारा की गयी थी। मसलन अनुच्छेद ३५२ के तहत आपातकाल लगाने के प्रावधानों में भी बदलाव किया गया था। हालांकि आपातकाल के बाद आई जनता पार्टी सरकार ने तमाम संशोधनों को निरस्त कर दिया। इस शब्द की आड़ में एक बड़ा भ्रम फैलाया गया है कि चूंकि संविधान में 'सेक्युलर' शब्द का जिक्र है, लिहाजा भारत के हर नागरिक को सेकुलर होना चाहिए। जबकि यह पूरी तरह से गलत अवधारणा है। सीधी सी बात है कि व्यक्ति न तो सेक्युलर होता है और न ही भारत का संविधान किसी व्यक्ति के लिए सेक्युलर होने की शर्त रखता है।

'सेक्युलरिज्म' का सीधा संबंध राज्य एवं उस राज्य के संविधान से है। संविधान व राज्य सेकुलर हो सकते हैं, अथवा नहीं हो सकते हैं। मसलन भारत एक पंथनिरपेक्ष राज्य है, जबकि पाकिस्तान एक इस्लामिक राज्य है। राज्य एवं उसका कानून धर्म व मजहब आधारित भेद अपने नागरिकों के लिए न करे, यही 'राज्य का सेकुलरिज्म' है। मगर कोई व्यक्ति सेकुलर हो सकता है, यह तर्क समझ से परे है! इसमें कोई शक नही कि भारत आदिकाल से सर्वधर्म सदभाव व सबका सम्मान करने वाला राष्ट्र है। चूंकि एक राष्ट्र के तौर पर इसकी संस्कृति हिन्दू संस्कृति रही है अतः इसे हिन्दू राष्ट्र कहा जाना गलत नहीं है। लेकिन जब भी बात हिन्दू राष्ट्र की होती है, तब-तब 'सेक्युलरिज्म' के कथित पैरोकार इस भ्रम को हवा देने लगते हैं कि 'हिन्दू राष्ट्र' की वकालत संविधान की प्रस्तावना के खिलाफ है।

जबकि सचाई यह है कि राष्ट्र और राज्य दोनों अलग-अलग अर्भे वाली संज्ञाएं हैं। राज्य जहां संविधान संचालित होता है वहीं राष्ट्र का निर्माण उस भूभाग की संस्कृति से होता है। इतिहास की पृष्ठभूमि पर जाकर भी यदि भारत के संदर्भ में देखें तो राज्य का अस्तित्व समय के साथ-साथ बदलता रहा है, जबकि एक राष्ट्र के तौर पर यह हजारों सालों से हिन्दू संस्कृति का राष्ट्र रहा है। यह कहना गलत नहीं होगा कि भारत का हिन्दू संस्कृति का राष्ट्र होना इसके सफल 'सेक्युलर स्टेट' होने की बड़ी वजह है। वरना दुनिया में तमाम इस्लामिक राष्ट्रों में 'स्टेट' की स्थिति कैसी है, यह किसी से छुपा नहीं है। चूंकि भारत की हिन्दू संस्कृति के चरित्र में ही एक सर्वधर्म समभाव वाले राज्य की संभावना आदिकाल से रही है, लिहाजा संविधान की प्रस्तावना में 'सेकुलर' शब्द और जोड़ने का औचित्य नहीं था। यह संशोधन अपने राजनीतिक हितों की पूर्ति के उद्देश्यों से ही अर्जित किया गया था।

इस ई-बुकलेट के लिए २५ जून २०१५ को आयोजित एक कार्यक्रम में दिए गये दो भाषणों का सम्पादित अंश एवं कई अन्य लेखकों के लेखों को संकलित किया गया है। डॉ श्यामा प्रसाद मुकर्जी रिसर्च फाउन्डेशन सबके प्रति आभार व्यक्त करता है। धन्यवाद

शिवानन्द द्विवेदी
रिसर्च फेलो,
डॉ श्यामा प्रसाद मुकर्जी रिसर्च फाउंडेशन

२५ जून १९७५:
लोकतंत्र का काला दिन

२५ जून २०१५ को दिल्ली स्थित मावलंकर हॉल में आयोजित एक कार्यक्रम में भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री अमित शाह के भाषण का संपादित हिस्सा

सबसे पहले आज जब आपातकाल के ४० साल समाप्त होने जा रहे हो, उस वक्त, आपातकाल के समय जो मानसिकता थी, उस मानसिकता के खिलाफ और लोकतंत्र को जीवित रखने के लिए जिन लोगों ने संघर्ष किया, चाहे वे जीवित हैं, नहीं है। चाहे वह आज जो लोग इस हॉल में बैठे हैं, नहीं बैठे हैं, उन सभी के श्रीचरणों में मैं प्रणाम कर अपनी बात की शुरुआत करना चाहता हूं, क्योंकि यही वे लोग हैं, जिन्होंने एक बहुत नाजुक मोड़ पर इस देश के लोकतंत्र को बचाने का काम किया, इसको आगे बढ़ाने का काम किया, उसको एक नई दिशा देने का काम किया और विजय ऐसी प्राप्त की कि सालों के सालों तक कोई हिम्मत न कर सके आपातकाल लगाने की। इस तरह विजयी होकर ये लोग बाहर आए और यह जो संघर्ष की मानसिकता के साथ जिन्होंने अपनी स्वतंत्रता को और कई लोगों ने अपने प्राणों को जोखिम में डालकर काम किया, वे सभी इस देश की कई पीढ़ियों के लिए हमेशा के लिए वंदनीय रहेंगे।

मित्रों ये वही देश है जिसमें दुनिया का सबसे पुराना लोकतंत्र कभी अस्तित्व में आया था, चाहे द्वारिका के अन्दर श्रीकृष्ण की अगुआई में हो, चाहे द्वारका के अंदर श्री कृष्ण की अगुवाई में बना हुआ गणतंत्र हो, चाहे वैशाली का गणतंत्र हो। मगर सबसे पहली संवैधानिक व्यवस्था, गणतंत्रीय शासन प्रणाली भारत के अन्दर शुरू हुई थी और आज भी पूरी दुनिया में सबसे बड़ा गणतंत्र अगर कहीं है, लोकतंत्र कहीं पर है तो हिन्दुस्तान दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है और मुझे कहने में कोई झिझक नहीं है कि दुनिया का सबसे मजबूत लोकतंत्र भारत में है, क्योंकि हमारे साथ कई देश आजाद हुए और लोकतंत्र अपनाया, मगर कई बार वहां पर लोकतंत्र ढहाया गया, उसके विकास का रास्ता टूटा, विकास की गति टूटी, लेकिन हिन्दुस्तान एकमात्र ऐसा देश है, जिसने सबसे बड़े परिवर्तन, लोकतंत्र के आधार पर खून का एक कतरा बहाए बगैर कर दिया और इसलिए यह कहने में किसी को झिझक नहीं होनी चाहिए कि भारत का लोकतंत्र आज विश्व में सबसे मजबूत लोकतंत्र है। भारत का लोकतंत्र विश्व में सबसे बड़ा लोकतंत्र है और भारत का लोकतंत्र विश्व में सबसे परिवर्तनशील लोकतंत्र भी है।

मित्रो, २६ जनवरी १९५० से लेकर आज तक के लोकतंत्र के इतिहास में एक ऐसे दो साल आये थे, २५ जून १९७५ से २ मार्च सालों के अंदर इस देश में लोकतंत्र कहीं दिखाई नहीं दिया। मगर अभी श्रीमान, सूर्यप्रकाश जी आर्डिनेंस वगैरह का पूरा इतिहास बता रहे थे। वह भी नई पीढ़ी को समझने के लिए बहुत जरूरी है और मैं बहुत सारे स्तंभ लेख देख रहा हूं, बहुत सारे आर्टिकल देख रहा हूं, उसमें इमरजेंसी क्यों लगानी पड़ी और इंदिरा जी इमरजेंसी को क्यों अस्तित्व में लायीं, घटनाओं का उल्लेख है। मगर मैं आज आप सबको कहना चाहता हूं कि आपातकाल ना आर्डिनेंस से आता है, न आर्डिनेंस लेने की मजबूरी पैदा करने वाली घटनाओं से आता है। आपातकाल तानाशाही की मानसिकता से आता है। जब वैसी मानसिकता होती हैं तो घटनाएं भी पैदा होती है। जब घटनाएं होती हैं, तब आर्डिनेंस निकालने की मजबूरी भी होती है।

आपातकाल का मूल कारण दूसरे के विचार न सुनना, दूसरे के विचार की स्वतंत्रता को छीन लेना और एकाधिकारवाद के साथ पूरी सत्ता अपने हाथ में करने की मानसिकता ही आपातकाल की जननी है।

मित्रों, मैं बाद में इस विषय पर आऊंगा, मगर पहले कुछ तथ्य बताना चाहता हूं। मित्रों, जब प्रधानमंत्री पद पर श्रीमती इंदिरा गांधी जी का कांग्रेस ने चुनाव किया, उसके बाद इस देश में बहुत बड़ा परिवर्तन होने लगा। धीरे-धीरे कांग्रेस की संस्थागत इकाइयां जुड़ीं और उसमें परिवर्तन होने लगा। स्वाभाविक था, उसका विरोध होने लगा। सिंडिकेट के सभी स्तंभों के द्वारा इसका विरोध होना शुरू हो गया और थोड़ा-बहुत समय जाते-जाते एक ऐसा माहौल बन गया कि कांग्रेस के दो टुकड़े हो गये। मगर जब कांग्रेस के दो टुकड़े हो गये उसके बाद एक बड़ा धड़ा सिंडिकेट का कांग्रेस से बाहर निकल गया और कांग्रेस की पूरी सत्ता श्रीमती इंदिरा गांधी के हाथ में आ गयी। एक स्वतंत्र राजनैतिक विश्लेषक के नाते मैं एक बात निश्चित कहना चाहता हूं कि कांग्रेस के जो नेता सत्य और सिद्धांत को बचाने के लिए कांग्रेस छोड़कर निकले थे, उन्होंने बड़ी गलती कर दी थी कि पूरी कांग्रेस ही इंदिरा जी के हाथों में दे दी। अगर वे

पार्टी में रहते, संघर्ष करते और पार्टी में रहकर सामना करते, तो शायद इस देश को कभी आपातकाल का सामना नहीं करना पड़ता। उन्होंने कांग्रेस छोड़ी और संघर्ष छोड़ा और पूरी पार्टी इंदिरा जी के हाथों में दे दी और संगठनात्मक शक्ति उनके पास आ गयी। सरकार उनके पास की ही और उसी में से १९६९ में राष्ट्रपति का चुनाव हुआ। अधिकृत उम्मीदवार को पराजित कर उन्होंने अपने प्रत्याशी को राष्ट्रपति बनवाया और १९७१ में जब इंदिरा जी फिर से चुनकर आई, तब पूरी तरह से सभी संस्थागत ईकाइयों पर इंदिरा जी का कब्जा था और इसके साथ ही कांग्रेस में और सरकार में एक परम्परा हो गयी, जो उनकी प्रशंसा करेगा वह पद पाएगा, जो उनकी बात करेगा वह पद पाएगा, जो उनका विरोध करेगा उसको सहन करना पड़ेगा और धीरे-धीरे एक ऐसी स्थिति का निर्माण हुआ, जो मेरिट वाले लोग थे, जिनमें पात्रता थी वे सब एक ओर कर दिये गये और जो उनकी प्रशंसा करने वाले लोग थे वे फोर्स में आए। मगर जब ऐसा होता है, तब उसका परिणाम भी तुरंत मिलता है। १९७१ से १९७५ आते-आते देश में चारों ओर एक प्रकार से अराजकता का निर्माण हो गया। मुद्रास्फीति बढ़ गयी, कानून व्यवस्था चरमरा गयी, लोगों को लगने लगा यह सरकार किस तरह से काम कर रही है। १९७५ आते-आते सरकार के प्रति एक अविश्वास का वातावरण का निर्माण हो गया और उसी में से आपातकाल लगाने का विचार कुछ लोगों ने श्रीमती गांधी के मन में डाला। आपातकाल का विचार देश में शांति और सुरक्षा बनाने के लिए नहीं था। देश पर संविधान का शासन करने के लिए नहीं था। अपनी सत्ता को बचाने के लिए आपातकाल का विचार लाया गया। गुजरात के अन्दर १९७४ में नवनिर्माण का आंदोलन हुआ और १९७४ के नवनिर्माण आंदोलन के कारण उस वक्त के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री चिमनभाई पटेल को जाना पड़ा। और जैसे ही चिमनभाई पटेल को जाना पड़ा उसके तुंरत बाद ही पूरे देश में इसका एक बहुत बड़ा असर हुआ। बिहार, मुम्बई एवं देश के अलग-अलग हिस्सों में असंतोष का ज्वालामुखी उभर गया। बिहार के अंदर श्री जयप्रकाश जी ने छात्र आंदोलन की अगुवाई की और उन्होंने वहां पर एक बड़ी जनजागृति का काम किया और इसके कारण बिहार में स्थिति संभल न पाए ऐसी हो गयी। उसी वक्त २८ अक्टूबर को श्री देवकांत बरुआ पटना पहुंचे और पटना कांग्रेस कार्यालय जाते-जाते रास्ते में एक ९ साल के बच्चे को उनकी गाड़ी ने कुचल दिया। बच्चे के कुचल जाने के बाद भी उनकी गाड़ी रुकी नहीं। काफिला जाता रहा, बच्चे की लाश के ऊपर से जाता रहा और बाद में पुलिस उस लाश को उठाकर ले गयी। जब इस घटना को मीडिया ने और खासकर इंडियन एक्सप्रेस ने देश भर में पहुंचाया, तो पूरे देशभर में हाहाकार मच गया और वहीं से शुरू हुआ इंदिरा को हटाने का और जयप्रकाश के सम्पूर्णक्रांति के नारे की शुरूआत उसी घटना ने की। और वहां से जो स्थिति हुई इसके कारण पूरे बिहार के अंदर एक आंदोलन की स्थिति हो गयी और बिहार में विराट जनप्रदर्शन नवम्बर १९७४ में हुआ, जिसकी अगुआई जयप्रकाश नारायण और नाना जी ने की। वहां जयप्रकाश जी पर पुलिस ने बर्बरतापूर्ण आघात किया, लाठीचार्ज किया और

देखने वाले कहते हैं अगर नाना जी न होते तो जयप्रकाश जी उस घटना के बाद जीवित न बचते। इतनी बर्बरतापूर्ण आघात के बाद यह घटना जैसे ही पूरे देश भर में फैली, मानो

भय का वातावरण पूरे देशभर में फैल गया और उसमें एक ऐसी स्थिति हुई कि सिद्धार्थ शंकर रे को ऐसी सोच आई कि इस स्थिति से अगर बाहर निकलना है तो आपातकाल लाना पडेगा।

३ जनवरी को ललित नारायण मिश्रा की हत्या हुई, उसमें भी एक बहुत बड़ी जागृति का काम किया और ८ जनवरी १९७५ को वह ऐतिहासिक पत्र इंदिरा जी को लिखा जिसमें आपातकाल लगाने की सलाह दी गई थी।

मित्रों, एक ऐतिहासिक फैसला जो १९७५ में आया, १२ जून १९७५ को इलाहाबाद हाईकोर्ट ने इंदिरा जी के चुनाव को असंवैधानिक करार दिया और इसके बाद एक संवैधानिक संकट पैदा हो गया देश में। इंदिरा जी इस्तीफा देने के लिए तैयार नहीं थी, कानून कहता था कि वह पद पर नहीं बनी रह सकती हैं और जैसा कि सूर्य प्रकाश जी ने बताया कि बसों में ला-ला कर उस समय घर-घर में भीड़ इकट्ठा की जाती थी और आज भी दुनिया को यह बताया जाता है कि इंदिरा जी भी लोकप्रिय हैं। मगर २४ जून को इलाहाबाद हाईकोर्ट के फैसले को सुप्रीम कोर्ट ने स्टे लगा दिया और स्टे को इस तरह से प्रचारित कर दिया गया कि उनकी विजय हो गयी है और इलाहाबाद हाईकोर्ट का फैसला गलत था। मगर स्टे के अन्दर इतने अपमानजनक तरीके से प्रधानमंत्री पद को बचाया गया था कि शायद ही विश्व के किसी लोकतंत्र के इतिहास में ऐसा हुआ हो। स्टे के अन्दर कहा गया कि आप प्रधानमंत्री तो रह सकते हैं, संसद के अंदर चर्चा में हिस्सा तो ले सकते हैं मगर वोटिंग नहीं कर सकते। बहुत टैक्निकल रूप से ड्राट किया हुआ फैसला जिसने इंदिरा जी को जगह दे दी कि इस्तीफा ना देना पड़े। २४ जून को यह फैसला आया और २५ जून की रात को इंदिरा जी ने इस देश में आपातकाल की घोषणा कर दी। और मित्रों, आपातकाल की घोषणा के साथ ही देशभर के सारे राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं को २६ जून की सुबह जेल में डाल दिया गया। २६ जून की सुबह ६ बजे जब कैबिनेट की बैठक हुई, तब तक कैदियों की संख्या ६८०० का आंकड़ा पार कर चुकी थी। देश के सारे प्रमुख नेता २५ तारीख की रात को ही जेल में डाल दिये गये और जो जहां था, आडवाणी जी, तथा अटल जी बैंगलूर में थे उन्हें वहां बंद कर दिया गया। जो जहां था उसे वहां नजरबंद कर दिया गया और जेल में डालकर उनको बाहर न निकालने के लिए जैसे कि श्री सूर्यप्रकाश जी ने बताया, एक के बाद एक आर्डिनेंस लाकर मीसा को मजबूत करने के लिए, न्यायपालिका को मजबूर करने के लिए। मीसा को मजबूत किया, न्यायपालिका को मजबूर किया और देश के लोकतंत्र को खत्म कर दिया। किसी भी व्यक्ति की सुनवाई नहीं हो सकती थी, कोई बाहर नहीं आ सकता था, देश की पत्रकारिता पर पूर्णतः सेंसरशिप ला दी गयी। कुछ भी छापना है तो जाकर पहले सेंसर से पास कराकर लाना पड़ेगा और गुजराल साहब ने थोड़ा सा इसका विरोध किया तो खामियाजा भुगतना पड़ा, उनको जाना पड़ा और वी.सी. शुक्ला को ला दिया गया और वी.सी. शुक्ला के आने के बाद तो चाहे वह आकाशवाणी हो, चाहे अन्य स्वतंत्र माध्यम हो सब कांग्रेस का भोंपू बनकर रह गये और एक ही आवाज सुनाई पड़ती थी इंदिरा गांधी की और संजय गांधी की, जैसे कि भारतभर में दूसरी कोई आवाज ही ना हो। इस तरह का एक माहौल इस देश में बना दिया गया था। लोकतंत्र के जो चारों स्तंभ हैं, चारों स्तंभ को लकवाग्रस्त कर दिया गया था। न्यायपालिका को मजबूर कर दिया गया था। कार्यपालिका का

तो सवाल ही नहीं था हिम्मत करने का और देश की संसद में बोलने वाले एक-दो इंडिपेंडेट सांसद के अलावा कोई नहीं था जो भी थे वह सारे सहमे हुए थे, डरे हुए थे। जिन्होंने भी प्रयास किया उनको उठाकर जेल में डाल दिया गया। कांग्रेस से निष्कासित कर दिया गया। कई लोगों ने छोटे-मोटे बहुत प्रयास किये मगर सब राजकीय नेताओं को जेल में डाल दिया गया।

मित्रों, १ लाख ४० हजार लोगों को अमानवीय तरीके से, अलोकतांत्रिक तरीके से जेल में १९ महीने तक बंद रखा गया। शायद ही किसी देश के लोकतांत्रिक इतिहास में ऐसी घटना हुई होगी। मगर भारत की मिट्टी में लोकतंत्र की खुश्बू बहुत मजबूत है। १ लाख ४० हजार लोगों को जेल में डालने के बाद भी न कोई झुका और ना कोई हारा। सबने संघर्ष चालू रखा, संघर्ष को आगे बढ़ाते रहे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विद्यार्थी परिषद, भारतीय जनसंघ, कई ऐसी संस्थाओं ने अपनी सारी की सारी कैडर को जेल में डाल दिया, परिवार के लोग भी साथ में जेल में डाल दिये गये। अभी श्री श्याम जाजू जी ने पत्र पढ़ा, इस तरह के पत्र से हौसला बढ़ाने का काम कार्यकर्त्ता करते थे और मैं मानता हूं मित्रों जब आने वाली पीढ़ी इस इतिहास को पढ़ेगी, तब उनको मालूम पड़ेगा, जब आज हम बोल रहे हैं, व्यक्ति का स्वातंत्र्य बचा है, मीडिया की स्वतंत्रता बची है, तो इसके लिए जिन्होंने आपातकाल के खिलाफ संघर्ष किया उन सभी लोगों को उसका यश जाता है। मित्रों, नसबंदी के लिए एकदम आतंकित करके रखा गया था। एक ही साल में एक करोड़ से अधिक लोगों की नसबंदी उमर देखे बगैर कर दी गई और पूरे देशभर में एक डर का माहौल पैदा कर दिया गया। "India is Indira and Indira is India" एक बहुत कुख्यात उक्ति, देवकांत बरुआ की, उस समय के फ़िजा में चलने लगी। मित्रों, कई लोगों ने इसके खिलाफ संघर्ष किया और परिणाम भी आया कि सन् १९७७ में जनता पार्टी की सरकार बनी। उस वक्त जनसंघ ने भी सालों से मेहनत की हुई विचारधारा पर बनाई हुई अपनी एक पार्टी को देश के लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए जनता पार्टी में विलीन करने का फैसला किया क्योंकि दल से देश महान, यह जनसंघ की मूल विचारधारा थी। इसलिए जनसंघ को भी जनता पार्टी में विलीन कर दिया गया और जनता पार्टी का शासन आया। सारे जो अध्यादेश निकाले गये थे वह सारे अध्यादेश नष्ट कर दिये गये। मगर मैं आज भी कहता हूं कि अध्यादेशों से आपातकाल नहीं आता, घटनाओं से आपातकाल नहीं आता, विचार से आपातकाल आता है।

एक बार संसद में चर्चा चल रही थी और जवाहर लाल नेहरू बहुत गुस्से से तिलमिला गये, जब आदमी गुस्से से तिलमिलाता है, तब उसके अन्दर की आवाज बाहर आती है, और एक वाक्य उनके मुंह से निकल गया "I will crush you" तत्काल श्यामा प्रसाद मुखजी खड़े हुए और कहा "I will crush your crushing mentality." आजाद होने के बाद सुभाषचन्द्र बोस के परिवार की जासूसी करवाई जाती है, सरदार पटेल के अग्नि संस्कार को भी पॉल्टिक्स का मुद्दा बनाया जाता है, सरदार पटेल को सालों तक भारत रत्न नहीं दिया जाता है। श्री अम्बेडकर जी का चित्र संसद में लगाने में सालों लग जाते हैं। यह एक मानसिकता है। और दूसरी मानसिकता है भारतीय जनता पार्टी जब आयी है तब जवाहर लाल नेहरू की शताब्दी मनाने के लिए फैसला करके एक कमेटी बनाती है और गुजरात में सरदार पटेल का विश्व में

सबसे ऊंची पुतला बनाने का फैसला करती है। इन दो मानसिकताओं के बीच में देश को आज निर्णय करना पड़ेगा। जो मानसिकता आपातकाल का सृजन करती है वह न सहन करने की मानसिकता है। चाहे नेहरू बनाम राजेन्द्र प्रसाद जी हो, चाहे नेहरू बनाम सरदार पटेल हो, इंदिरा बनाम मोरारजी हो या आगे भी जो वंशवाद चला। उसका परिणाम यह आया कि आपातकाल के बाद कांग्रेस का नेतृत्व ४० साल में ३२ साल तक एक परिवार के हाथ में आ गया। मित्रों, कहते हैं कि लोकतंत्र चार स्तंभों पर खड़ा है, मैं उसमें एक बात ज्यादा जोड़ना चाहता हूं, क्योंकि हमने बहुपक्षीय लोकतांत्रिक व्यवस्था को स्वीकार किया है तो इसके लिए बहुत जरूरी है, अगर लोकतंत्र को बचाना है तो लोकतंत्र में उन्हीं पार्टियों को काम करना चाहिए जिनका आंतरिक लोकतंत्र आज भी जीवित हो, जिसके अंदर विचारों के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हो, जिसका नेता, जिसका नेतृत्व, जिसका संगठन पार्टी के निचले स्तर से आए हुए कार्यकर्त्ता द्वारा तय होता हो, घरानाशाही के आधार पर तय ना हो, वह बहुत जरूरी है और देश में आपातकाल लगाने की संभावना उसी दिन खत्म होगी जब देश की जनता वोट देने से पहले विचार करेगी कि पार्टी के अन्दर आंतरिक लोकतंत्र है या नहीं। आप व्यक्ति को वोट देते हो तो फिर से आपातकाल आएगा। अगर आप विचार को वोट देते हो, पार्टी को वोट देते हो तो आपातकाल कभी नहीं आ सकता। पार्टी की आंतरिक लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए मैं आज इस डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी शोध संस्थान के मंच से आह्वान करता हूं कि देश की जनता के अब विचार बदलने का समय आ गया है। जब आप तय करते हैं कि इस देश की धुरी किस व्यक्ति के हाथ में सौंपनी है, किस पार्टी के हाथ में सौंपनी है, तब सोचिए

वह व्यक्ति कौन सी पार्टी से आता है और जब तय करते हैं कि किस पार्टी के हाथ में सौंपनी है तब आप विचार कर लीजिए कि उस पार्टी के अन्दर आंतरिक लोकतंत्र जीवित है या नहीं। अगर घरानेशाही के आधार पर चलने वाली पार्टियां जो आने वाले समय में इस देश पर शासन करेंगी तो आपातकाल की संभावनाएं खत्म नहीं होंगी। आपातकाल कभी अध्यादेशों से नहीं आता, आपातककाल मानसिकता से आता है।

जिन्होंने अपनी पार्टी में आंतरिक लोकतंत्र खत्म कर दिया, एक ही परिवार के लोग, मैं कोई एक पार्टी की बात नहीं करता, ढेर सारी पार्टियां हैं, १६५० पार्टियों के जंगल में २-३ पार्टियां ही ऐसी हैं कि जिसके अंदर आंतरिक लोकतंत्र आज जीवित है, उसमें से एक भारतीय जनता पार्टी है और आपातकाल की मानसिकता के खिलाफ तानाशाही की मानसिकता के खिलाफ वही पार्टी संघर्ष कर सकती है जो अपने आप में एक लोकतंत्र को संभाले हुए हैं, उसको संवद्धित किये हैं। अगर पार्टी का आंतरिक लोकतंत्र मजबूत नहीं है तो वह पार्टी देश में लोकतंत्र की रक्षा कभी नहीं कर सकती।

मित्रों कई सारी बातें हैं जो आपातकाल के साथ जुड़ी हुई है। मुझे सौभाग्य नहीं मिला आपातकाल के दौरान संघर्ष करने का, क्योंकि मेरी उम्र ही उस वक्त ९ साल की थी। मगर मैं इतना जरूर कहना चाहता हूं, मित्रो जिन लोगों ने भी आपातकाल के दौरान लोकतंत्र को बचाने में संघर्ष किया है। मैं भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष के नाते उन्हें इतना आश्वासन देना चाहता हूं कि भारतीय जनता पार्टी राजनीति को उसी दिशा में ले जाने के लिए निश्चित

रूप से प्रयास करेगी और परिणाम भी लाएगी। जिस चीज के लिए आपातकाल के सामने लड़ने वाले योद्धाओं ने संघर्ष किया। उसको राजनीति से संरक्षित करने के लिए, उसको सवंर्धित करने के लिए, उसको आगे बढ़ाने के लिए, लोकतंत्र के विचार को आगे बढ़ाने के लिए भारतीय जनता पार्टी हमेशा कटिबद्ध रहेगी, समर्पित रहेगी और प्रयत्नरत रहेगी।

मित्रों आज रात को १२ बजे आपातकाल को ४० साल समाप्त होंगे। मैं मन से इस देश की जनता को और भारतीय जनता पार्टी के सभी कार्यकर्त्ताओं को

आपातकाल के उन सभी लोगों को जिन्होंने आपातकाल के दौरान संघर्ष किया, उन सभी संगठनों के कार्यकर्त्ताओं को मैं अपनी ओर से और पार्टी की ओर से श्रद्धा सुमन अर्पित करना चाहता हूं और नरेन्द्र मोदी सरकार ने एक स्तुत्य काम किया है, जयप्रकाश नारायण के गांव में, उनके घर को राष्ट्रीय स्मारक घोषित करके उसको सम्मान देने का काम किया है। मैं मानता हू कि सालों-सालों तक ये आपातकाल की लड़ाई को इस राष्ट्रीय स्मारक से लोग पहचानेंगे, उससे प्रेरणा लेते रहेंगे और आगे भी इससे प्रेरणा लेकर इस विचार को आगे बढ़ाते रहेंगे, यही मेरी अपेक्षा है।

भारत माता की जय।

२५ जून, १९७५

आपातकाल का काला दिवस

२५ जून २०१५ को दिल्ली स्थित मावलंकर हॉल में आयोजित एक कार्यक्रम में भाजपा के राष्ट्रीय महामंत्री (संगठन) श्री रामलाल के भाषण का संपादित हिस्सा

आपात काल के दौरान मैं भी मीसा बंदी के रूप में अपने जीवन के कुछ वक्त गुजारा हूं, इसलिए शायद मुझसे भी बोलने का आग्रह किया गया है। अभी अरुण सिंह जी ने जानकारी दी कि लोकनायक जय प्रकाश जी के जन्म स्थान पर एक भव्य स्मारक बनाने की घोषणा कल कैबिनेट ने की है जो कि स्मरणीय और सराहनीय कदम है। मैं सोचता हूं कि आपातकाल के संघर्ष के अनेक संगठन नायक थे, अनेक व्यक्तित्व नायक थे लेकिन मैं मानता हूं कि आपातकाल के सबसे बड़े नायक थे। लोकनायक बाबू जय प्रकाश नारायण जी थे। उनके जन्म स्थान पर स्मारक बनाकर आपातकाल में संघर्ष करने वाले सभी साथियों की सम्मान की शुरुआत कल कैबिनेट ने और माननीय प्रधानमंत्री जी ने की है। मित्रो जब आपात काल की चर्चा होती है, जिन्होने आपातकाल को भुगता है ये शब्द सुनते ही उनके और उनके परिवार के सदस्यों के निश्चित रूप से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ऐसा दृश्य आंखों के सामने आ जाता

है और लगने लगता है कि सब ओर अंधेरा ही अंधेरा है कहीं से कोई रोशनी की किरण नहीं दिखाई देती, एक अनिश्चितता लगती है। क्या होगा? कैसे होगा? कोई रास्ता निकलेगा क्या? एक साथ कई सवाल खड़े हो जाते हैं। आपातकाल की समय केवल सत्याग्रह करने वाले ही नहीं उनकी सहायाता करने वालों पर भी पाबंदी थी। उनको भी जेलों में डाल दिया जाता था। चारों ओर एक ऐसे भय का वातावरण बना दिया गया था कि लोग कुछ करने से पहले दस बार सोचते थे। आपातकाल के त्रासदी को शब्दों से जाहिर नहीं किया जा सकता, जिन्होंने आपातकाल नहीं देखा वास्तव में उनके लिए आपात काल की कल्पना करना भी कठिन है। जिन्होंने आजादी नहीं देखी वो कल्पना नहीं कर सकते उस दौर की त्रासदी की।

प्रतिवर्ष इन कार्यक्रमों को मनाने का उद्देश्य आपातकाल के अंधेरे को याद करने का नहीं है, बल्कि उस अंधेरे के खिलाफ राष्ट्रवादियों ने किस तरह से संघर्ष किया उस अनुभवों को और उन यादों को अपने अंतर्मन में संजोकर रखना है और आने वाली पीढ़ी को अवगत कराना है, जिससे कि हम एक प्रेरणा ले सकें कि उजाला लाने के लिए कैसे काम किया जाता है।

आपातकाल को यदि तीन शब्दों में व्याख्या करना हो तो मुझे लगता है कि असत्य, अहंकार और अराजकता इनको मिला दिया जाय तो आपातकाल शब्द बन जाएगा। आपातकाल असत्य की प्रतिमूर्ति था, आपातकाल अहंकार की प्रतिमूर्ति था, आपातकाल अराजकता की प्रतिमूर्ति था। इन शब्दों से हम समझ सकते हैं कि कैसा वातावरण रहा होगा। अभी पिछले वक्ताओं ने बताया कि किर्सी आदमी का हाथ नहीं है तो पटरी उखाड़ते दिखाया जाता है, पैर नहीं है तो खम्भे पर चढ़ते दिखाया जाता है, आंख नहीं है तो सरकार के खिलाफ पर्चा पढ़कर भाषण देते हुए दिखाया जाता है। क्या-क्या आरोप लगे, कैसे आरोप लगे किन पर आरोप लगे, इससे समझा जा सकता है कि किस असत्य की नींव पर आपातकाल को खड़ा किया गया था और किस ढंग से सारे केस बनाए गए थे। जब कुछ नहीं दिखता था तब देश के राष्ट्रवादी संगठनों ने निर्णय किया कि लोकतंत्र की रक्षा के लिए हम आगे आएंगे। तत्कालीन जनसंघ और विशेष रूप से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उस समय के जो कर्ता-धर्ता थे, स्वयंसेवक थे, पदाधिकारी थे, उन्होंने कहा कि हम सामाजिक सांस्कृतिक संगठन हैं लेकिन देश में आजादी ही नहीं रही तो संस्कृति कैसे सुरक्षित रहेगी, इसलिए लोकतंत्र के संघर्ष के लिए अपने पूरे संगठन को झोंक दिया, तत्कालीन सरसंघचालक पूजनीय बालासाहब देवरस ने स्वयं घोषणा करते हुए कहा कि संघर्ष का समय आ गया है थोड़े दिन के लिए समाजिक कार्यों में कमी भी आयी तो कोई चिंता की बात नहीं लोकतंत्र जीवित रहना चाहिए। इस आह्वान के बाद योजना बनाकर सारे लोग लग गए, किसी तरह भी भूमिगत रहकर कार्य करने का स्वभाव नहीं था लेकिन आप लोगों में से अनेक लोग हैं जिन्होंने यह सब अनुभव किया हमने उन सब विषयों को समझा सीखा, कैसे सावधानी रखी जा सकती है इसका भी अनुभव लिया, संघर्ष किया और फिर विजय भी प्राप्त की। ये आपातकाल का संघर्ष ऐसी अनेक बातें समझने सीखने का भी है। कार्यकर्ताओं ने किस हिम्मत से काम लिया। डराने की कैसी घटनाएं हुईं लोगों के नाखून उखाड़ लिए गए, युवकों के पूरे शरीर को जलती हुई सिगरेट से दाग दिया गया। जेल में और थाने की काल

कोठरी में रखकर तीन-चार दिन लगातार ऑखों पर तेज रोशनी डाली गयी। अंधेरे में रखा गया, भूखा रखा गया, पेशाब पिलाया गया, उनको अनेक प्रकार से यातनाएं दी गयीं। यहां मौजूद अनेक लोगों ने भी उन यातनाओं को भुगता है। कोई सत्याग्रह करके जाता था तो उन लोगों के साथ मारपीट की जाती थी उनको प्रताड़ित किया जाता था। यह सब करने के पीछे उनका ध्येय था कि कोई भी सत्याग्रह करने की हिम्मत ना करे। उसके बाद भी सरकार के लिए समझने की बात थी, पता नहीं उनके समझ में आया कि नहीं आया, इतने सब भय के बाद भी एक के बाद एक जत्थे सत्याग्रह करके जाते रहे। सरकार को शायद अनुमान नहीं था कि सत्याग्रह करके भी लाखों लोग जेल जा सकते हैं। सवा लाख से अधिक लोग स्वयं जेल में गए। लाखों लोग ऐसे थे जिन्होने सत्याग्रह किया किन्तु जिनको पुलिस पकड़ नहीं पायी, जेल में जगह नहीं थी, ऐसा जबरदस्त आंदोलन खड़ा हुआ राष्ट्रवादी संगठनों के द्वारा और उस सबका परिणाम हुआ कि लोकतंत्र विजयी हुआ, लोकतंत्र की रक्षा हुई। जय प्रकाश नारायण जी जेल से छूटने के बाद संघ के एक शिविर में आए थे तब उन्होंने कहा था कि यदि संघ के स्वयंसेवक नहीं होते तथा सभी राष्ट्रवादी ताकतें एकजुट होकर खड़ी नहीं होती तब न तो मैं जेल से बाहर आता न अटल जी अडवाणी जी ही जेल से बाहर आ पाते, न जार्ज फर्नांडीज और न बाकी नेता जेल से बाहर आते न लोकतंत्र विजयी होता। यह आजादी मिली है तो राष्ट्रवादी संगठनों की एक जुटता और संघर्षों के आधार पर मिली है। आज संकल्प लेने का दिन है हम अंधेरे को न याद करें वरन् हम अंधेरे को किस हिम्मत से दूर करके कैसा संघर्ष कर सकते हैं, एक जुटता के आधार पर कैसे समाज को खड़ा कर सकते हैं और इस देश की रक्षा कर सकते हैं यह सोचें। वास्तव में यही हमारा डीएनए है हम इस डीएनए को याद करें और हमारा यह डीएनए बना रहे तो निश्चित रूप से दुनिया की कोई ताकत हमारे लोकतंत्र की ओर आँख उठाकर देखने की कोशिश नहीं कर सकती है। हम सभी उस आपातकाल को इस रूप में ही याद करते हुए आगे बढ़ें ये आप सबसे प्रार्थना है। माननीय अटल जी ने जो कविता लिखी उसकी चार पंक्तियां-

संघर्ष की बेला है,

अब रुक नहीं सकते।। टूट सकते हैं,

मगर झुक नहीं सकते।।

मुझे लगता है कि इन पंक्तियों को याद करके आज हम मन में संकल्प लें और संकल्प लेकर निरंतर आगे बढ़ते रहें तो निश्चित रूप से भारत दुनिया में सिरमौर बनेगा।

भारत माता की जय! वंदे मातरम!!

'इमरजेंसी' का दुःस्वप्न

राम बहादुर राय

आज इमरजेंसी को याद करना उथल-पुथल की उस परिस्थिति में लौटने जैसा है। हर साल हम झांककर देखते हैं कि आखिर क्यों वैसा हुआ? लोकतंत्र का गला घोंटकर २६ जून, १९७५ को तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने इमरजेंसी लगा दी थी। तानाशाही थोप दी गई थी। २५ जून की आधी रात के बाद लोकनायक जयप्रकाश नारायण को पुलिस गिरफ्तार करने पहुंची। वे गांधी शांति प्रतिष्ठान में ठहरे हुए थे। उन्हें जगाया गया। गिरफ्तारी पर उनकी पहली प्रतिक्रिया थी- 'विनाश काले विपरीत बुद्धि।' उनकी गिरफ्तारी की खबर पाकर कांग्रेस के बड़े नेता चंद्रशेखर संसद मार्ग थाने पहुंचे। उन्हें भी गिरफ्तार किया गया। उस रात गैर कम्युनिस्ट विपक्ष के बड़े नेताओं को जगह-जगह से पुलिस पकड़ती रही। उस रात हजारों लोग बंदी बनाकर काल कोठरी में डाल दिए गए। वह इमरजेंसी लगाने से पहले की एहतियाती कार्रवाई थी। इमरजेंसी तो अगले दिन घोषित की गई। लेकिन जिस तरह बड़े नेताओं को गिरफ्तार किया गया, उसी तरह देशभर के ज्यादातर अखबारों की बिजली काट दी गई। जिससे वे लोगों को तानाशाही थोपने के कदम की सूचना न दे पाएं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सहित अन्य २५ संगठनों पर पाबंदी लगा दी गई। संघ पर पाबंदी लगाने से पहले ३० जून, १९७५ को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक बाला साहब देवरस को नागपुर स्टेशन पर बंदी बना लिया गया। यह कलंकपूर्ण घटना ४० साल पहले की है। तब से दो-तीन पीढ़ियों का फासला हो गया है। नई पीढ़ी के सामने सबसे पहला सवाल यह आएगा कि इमरजेंसी क्यों लगाई गई? इसके दो राजनीतिक उत्तर हैं। पहला इंदिरा कांग्रेस का अपना कथन है तो दूसरा उनका है जो लोकतंत्र की वापसी के लिए जेपी की अगुवाई में लड़े और जीते। इंदिरा कांग्रेस का कहा माने तो इमरजेंसी जरूरी थी। क्या इसमें कोई सच्चाई है? असल में जो हालात नहीं थे, उसे इंदिरा कांग्रेस ने बनाया और उसका ढोल पीटा। उसके बहाने इमरजेंसी लगाई। लोगों की आजादी छीन ली। संविधान को स्थगित कर दिया। संविधान से ऊपर संजय गांधी की सत्ता को बैठा दिया। संभवतः नई पीढ़ी को यह भी पता न हो कि संजय गांधी कौन थे। उन्हें इंदिरा गांधी के दूसरे बेटे से ज्यादा उनके राजनीतिक वारिस के रूप में माना जाता था। इमरजेंसी का असली कारण वह नहीं था, जिसे इंदिरा गांधी बताती थीं। असली कारण जानने के लिए थोड़ा और पीछे जाना होगा। १९७१ में इंदिरा गांधी रायबरेली से लोकसभा के लिए चुनी गई थीं। उनके प्रतिद्वंद्वी थे, राजनारायण। चुनाव में धांधली और प्रधानमंत्री पद के दुरुपयोग का आरोप लगाकर राजनारायण ने इलाहाबाद हाईकोर्ट में एक चुनाव याचिका दायर की। जब मुकदमा सुनवाई पर आया तो कयास लगाया जाने लगा कि अगर इंदिरा गांधी हार जाती हैं तो वे क्या करेंगी। क्या इंदिरा गांधी आसानी से प्रधानमंत्री का पद छोड़ देंगीं? जो लोग उनकी कार्यशैली और उनके तानाशाही मिजाज से वाकिफ थे, वे सही निकले। उनका अनुमान था कि इंदिरा गांधी हर हथकंडे अपना कर प्रधानमंत्री बनी रहना चाहेंगी।

आखिरकार वह दिन आ ही गया। १२ जून, १९७५ को करीब १० बजे इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज जगमोहन लाल सिन्हा ने फैसला सुनाया। राजनारायण जीते। इंदिरा गांधी मुकदमा हार गईं। ६ साल के लिए उनकी लोकसभा सदस्यता चली गई। जज ने सुप्रीम कोर्ट में मुकदमा सुने जाने तक अपने फैसले के अमल पर रोक लगा दी। इंदिरा गांधी की राजनीतिक जिंदगी में जून का महीना अवसाद का रहा है। इसी महीने में उनसे अनेक बार ऐतिहासिक गलतियां हुई हैं। १२ जून, १९७५ सिर्फ मुकदमा हारने के लिए ही नहीं जाना जाएगा। इसलिए भी कि वह इंदिरा गांधी के मानसिक संतुलन को झकझोर देने वाला दिन था। उसी दिन सुबह डी.पी. धर का देहांत हो गया। जो उनके लिए आंख-कान और नाक का काम करते थे। शाम होते-होते गुजरात विधानसभा के चुनाव का परिणाम आया। कांग्रेस पराजित हुई। देश में पहली बार जनता मोर्चा का प्रयोग सफल हुआ और बाबू भाई पटेल के नेतृत्व में सरकार बनने का रास्ता साफ हुआ। जगमोहन लाल सिन्हा के फैसले पर सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाने के लिए इंदिरा गांधी को १२ दिन का समय मिल गया। सुप्रीम कोर्ट में गर्मी की छुट्टियां थी। जैसा कि होता है, ऐसे समय में एक जज जरूरी काम निपटाता है। उन दिनों यह काम वी.आर. कृष्ण अय्यर के पास था। वे सुप्रीम कोर्ट में तब 'वेकेशन' जज थे। २४ जून को उन्होंने इंदिरा गांधी को थोड़ी राहत दी। वे फैसला आने तक सदस्य बनी रह सकती थीं, लेकिन लोकसभा के रजिस्टर पर दस्तखत करने पर पाबंदी लगा दी। वे लोकसभा की कार्यवाही में भी हिस्सा नहीं ले सकती थीं।जाहिर है, इंदिरा गांधी को सुप्रीम कोर्ट से बड़ी राहत नहीं मिली। उनका प्रधानमंत्री पद खतरे में पड़ गया। मुकदमा हारने और सुप्रीम कोर्ट से राहत न पाने के कारण इंदिरा गांधी की नैतिक पराजय हो गई। इसे वे पचा नहीं पाईं। यही वह असली कारण है कि उन्हें अपनी कुर्सी बचाने के लिए बड़ा दाव चलना पड़ा। यह उनकी मजबूरी नहीं थी। उनके राजनीतिक चरित्र की इसे मजबूती भी नहीं कहेंगे। सत्ता से चिपके रहने की यह उनकी लालसा थी। वह परिस्थिति कैसे पैदा हुई? इसे समझने के लिए उस दौर की महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं को गौर से देखना चाहिए। इंदिरा गांधी 'गरीबी हटाओ' के नारे से १९७१ की लोकसभा में प्रचंड बहुमत पाकर आई थीं। उनसे बड़ी उम्मीदें थी। लेकिन साल डेढ़ साल नहीं लगे और लोग महंगाई, भ्रष्टाचार, शासन के अत्याचार और अनैतिकता से उबने लगे। विरोध में आवाजें उठने लगीं। आंदोलन खड़े हुए। जिसका नेतृत्व लोकनायक जयप्रकाश नारायण कर रहे थे। आंदोलन राष्ट्रव्यापी बनता जा रहा था। आंदोलन अहिंसक था। लोकतांत्रिक था। उसका नारा था- संपूर्ण क्रांति। आंदोलन में छात्र-युवा, विपक्षी दल, उनके जनसंगठन और गांधी धारा के सामाजिक कार्यकर्ता बड़ी संख्या में सक्रिय थे। आजादी के बाद मुख्यधारा का वह सबसे बड़ा आंदोलन था। उस आंदोलन के नेतृत्व से इंदिरा गांधी संवाद बना सकती थीं। इसके ठीक विपरीत उन्होंने टकराव का रास्ता चुना। सुप्रीम कोर्ट से २४ जून को इंदिरा गांधी निराश लौटीं। अगले दिन उन्हें तत्काल एक बहाना मिल गया। सत्ता की राजनीति जब अपनी कुर्सी बचाने में सिमट जाए तो ऐसे बहाने बहुत खतरनाक साबित होते हैं।पहले यह जानें कि इंदिरा गांधी को बहाना क्या मिला। २५ जून, १९७५ को रामलीला मैदान में आंदोलन के समर्थन में बड़ी सभा थी। उसमें जेपी का भाषण हुआ। उन्होंने वहां जो कहा उसे सरकार ने

तोड़-मरोड़कर पेश किया। इंदिरा गांधी ने आरोप लगाया कि जेपी सेना में बगावत कराना चाहते थे। इसलिए आंतरिक सुरक्षा को बनाए रखने के लिए इमरजेंसी लगानी पड़ी।

इंदिरा गांधी का दावा निराधार था। अगर वे इस्तीफा दे देतीं और कांग्रेस की संसदीय पार्टी किसी को उनकी जगह नेता चुन लेतीं तो इमरजेंसी की जरूरत ही नहीं पड़ती। यह हो सकता था। लेकिन इसके लिए जरूरी था कि कांग्रेस पार्टी एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया को अपनाए। इंदिरा गांधी ने १९६९ में कांग्रेस को तोड़ा। उस समय के अनुभवी नेताओं से मुक्ति पाने के लिए और अपनी मनमानी चलाने के लिए उन्होंने जो पद्धति अपनाई उसमें यह संभव ही नहीं था कि वे पद छोड़ने का विचार करतीं और कोई दूसरा व्यक्ति प्रधानमंत्री बनता।

संजय गांधी के उदय ने इस रास्ते को बंद ही कर दिया था। इमरजेंसी लगवाने में संजय गांधी की बड़ी भूमिका थी। प्रधानमंत्री निवास के सामने तब गोलमेथी चौक होता था। वहां हरियाणा के तत्कालीन मुख्यमंत्री चौधरी बंसीलाल बसों में भरकर लोगों को भेजते थे। इंदिरा गांधी के समर्थन में रोज भाड़े के लोग जमा किए जाते थे। इसके लिए डीटीसी की बसों का खुलकर दुरुपयोग हुआ।

रामलीला मैदान में जेपी की सभा से पहले ही इंदिरा गांधी राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद से मिलने गईं। उनके साथ पश्चिम बंगाल के तत्कालीन मुख्यमंत्री सिद्धार्थ शंकर रे थे। रास्ते में इंदिरा गांधी ने उनसे पूछा कि बिना मंत्रिमंडल की बैठक बुलाए इमरजेंसी कैसे लगाई जा सकती है, इसका कानूनी रास्ता खोजिए। सिद्धार्थ शंकर रे ने थोड़ा वक्त मांगा और शाम को वह नुस्खा बता दिया। उसी आधार पर बिना मंत्रिमंडल की बैठक बुलाए इमरजेंसी की घोषणा पर राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद से दस्तखत कराया गया। इसके लिए वे राजी नहीं थे, पर दबाव में आ गए।

२६ जून, १९७५ की सुबह मंत्रिमंडल के सदस्यों को जगाकर बैठक की गई। जिसमें इंदिरा गांधी ने इमरजेंसी लगाने के फैसले की जानकारी दी। सिर्फ सरदार स्वर्ण सिंह ने, वह भी बहुत दबी जुबान से अपना एतराज जताया।

इमरजेंसी की घोषणा से निरंकुश शासन का दौर शुरू हुआ। वह आजाद भारत की काली रात बन गई। लगता था कि कभी लोकतंत्र लौटेगा नहीं। इमरजेंसी का अंधेरा बना रहेगा। में जुल्म और ज्यादतियों के हजारों लोग शिकार हुए। फिर भी लोकतंत्र की वापसी के लिए भूमिगत संघर्ष चला। उससे एक चेतना फैली। दुनिया में जनमत बना। जिसके दबाव में इंदिरा गांधी को झुकना पड़ा।

लोकसभा के चुनाव की घोषणा हुई। इमरजेंसी में ही चुनाव कराने की चाल इंदिरा गांधी ने इसलिए चली कि उन्हें अपनी विजय का विश्वास था। वे अपनी तानाशाही पर लोकतंत्र की मुहर लगवाना चाहती थी। लेकिन चुनाव परिणाम ने उनकी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। इंदिरा गांधी अपनी सीट भी नहीं बचा पाईं। मंत्रिमंडल का इस्तीफा सौंपने से पहले इंदिरा गांधी ने इमरजेंसी को हटाया। ❍

(यथावत पत्रिका से साभार)

WHEN CIVILISED FREEDOM DIED

✍ Dr. Anirban Ganguly

June 25 to June 26 announces the 41st year of one of the darkest episodes in the history of independent India. These were days on which was carried out a murderous assault on India's soul that had found utterance after long suppression on the midnight of August 15, 1947. The declaration of Emergency on the midnight of June 25 was a brazen attempt to suppress that soul of free India, a maniacal assault on its civilisational being. It announced the darkest phase in free India's experiment with democracy, a phase where nothing was sacred, where the sacred was profaned and the sublime ridiculed and crushed under the weight of an overweening power of intolerance, of hatred and of irreverence for the power of human goodness and of human liberty. Never since its independence had India witnessed such darkness enveloping her present and threatening her civilisational identity.

Yet, so intricately designed is the miasma of deception or so complete has been the control of the system by the intellectual cheerleaders of those who carried out this near fatal assault on the Indian psyche that its history was hardly ever taught, nor discussions on it ever encouraged. A true and essential history of that phase when a democratically elected Government in India chose to suppress its own people and to hammer down dissent, has never been written or narrated — a powerful and motivated section, sometime participants and proponents of that terrorising clampdown have ensured that a shroud of silence and amnesia hover around and cover that episode so that generations to come may someday disbelief that India had one day passed through such an agony.

It is essential, therefore, to seriously consider the need to introduce the study of the Emergency and assault on Indian democracy and the Constitution as a course not only in universities across the country but also at early levels when a defence of democracy can be erected in young minds. The Indian Council of Historical Research may also consider initiating a multi-volume project on recording, documenting and narrating the history of the Emergency so that the story of those dark days are forever recorded and preserved for posterity.

Those who readily disseminate sermons on the need to protect free speech

and resist the rise of a "fascist" "corporate-communal alliance" were either at the forefront of justifying the imposition of the Emergency dictatorship or were absent during the massive and countrywide struggle for restoration of democracy launched by the workers of the Rashtriya Swayamsevak Sangh and the Jana Sangh, many of whom never came out alive from detention or when they did, were crippled and maimed for life.

Suffering from the dilemma of whether to see the Emergency as the manifestations of imperialism or the advent of a dictatorship of the proletariat, these self-styled messiahs of the ordinary and oppressed people of India, conveniently avoided the jails and hell-holes of the Indira Gandhi regime. Some of the most articulate comrades, great and profound dialecticians, had themselves come out in support of this phase.

The veteran comrade Shripad Amrit Dange advised Indira to clamp down on reactionaries, because "JP (Jayaprakash Narayan) represented forces at home and abroad who were determined not so much to oust her from power as to destroy our democratic system and our independent foreign policy." Dange's foot soldiers in Bihar, the 'red shirts' tried to subdue and crush the spontaneous students' movement in favour of democracy by taking out huge demonstrations with red shirt — so similar to 'brown shirt storm troopers' — volunteers who were armed "not only with lathis but with other weapons."

Dange's partymen in Parliament, also came out in Indira Gandhi's favour, especially her attempt to fix the Constitution. Indrajit Gupta was all for "taking away the Supreme Court's powers in many things" while his colleague and her close friend, Bhupesh Gupta, interestingly referring to himself "as a citizen of the country, as a democrat, as a champion of the working people of our country, as one who believes in going forward by smashing all the way the forces of reaction and counter-revolution" extended support to Indira Gandhi's efforts to confer upon herself supreme regulative powers even beyond the Constitution.

In fact, the one document, the Justice JC Shah Commission report, that had recorded, to a certain extent, the degree of bestiality unleashed on the people of India during those days and had unravelled the intrigue to subjugate them under a new variety of fascism was itself confiscated and consigned to the dungeons of oblivion preventing future India from evaluating and admiring the second struggle for freedom that Indians had undertaken to protect their destiny.

On August 15, 1975, a deeply disturbed Dada Dharmadhikari, veteran

freedom-fighter and Gandhian, wrote to Acharya Vinoba Bhave — who had strangely argued that the Emergency period was a phase of national discipline — anusashana parva — that he was not sure "whether today is the 29th anniversary of our freedom or its first death anniversary…" Prabhakar Sharma, a dedicated Sarvodaya worker and erstwhile satyagrahi, in a letter to Indira Gandhi, described how shocked he was to see atrocities perpetrated by "a so-called Congress Government that was educated in non-violence under the leadership of Gandhiji". Sharma, who eventually immolated himself in protest against Indira's dictatorship, sacrificing his body at the "altar of your Maintenance of Internal Security Act", saw her regime as a "body of goondas" which had "completely turned its back to humanity, character, justice, decency, honesty and Indian culture". Hundred of such Gandhians and freedom fighters waged a second battle of freedom and at times succumbed in their fight to protect freedom in free India.

While Indira Gandhi's partymen were busy settling scores, oppressing ordinary people by stuffing and torturing them in jails or forcefully sterilising them through an elaborate and official population reduction programme that was pushed through by the Congress toughs, who threatened Governments servants with non-payment of salaries and dismissal if they failed to meet targets — in fact in Bihar over 80 people died due to faulty sterilisation procedures — the RSS and the Jana Sangh workers in thousands courted arrest, faced torture and death in their struggle to restore democracy and preserve India's integrity.

The RSS's sacrificing spirit and zeal to protect India's spirit of democracy so profoundly moved Shivaram Karanth, legendary littérateur-activist, that he did not hesitate to publicly observe that "…the main burden of the struggle (against Emergency) was borne by them (workers of the RSS), it is they who had kept up the people's moral. More than 80 per cent of the cadres who struggled for democracy had been drawn from the RSS. I have personally seen thousands of their young men solely inspired by a spirit of idealism, without any desire or expectation in return, plunging into struggle. Often they had nothing to eat, no place to rest, but their zeal remained unabated." Isn't it ironical, that 40 years since that dark phase, those who imposed Emergency and those who directly or indirectly supported it, refer to those who resisted as "fascists" and "anti-democratic"? This June 25 to June 26, is an opportunity to, as JP said, tell people "of the meaning of civilised freedom, and that freedom and democracy are the foundations of civilised mankind".

NEVER AGAIN, NEVER AGAIN, NEVER AGAIN

Dr. A. Surya Prakash

Pardon this columnist for beginning the article on a personal note, but one among the many painful memories that he carries of the dreaded Emergency, which Prime Minister Indira Gandhi imposed on the country 40 years ago, was to have the Inspector-General of Police, Karnataka, as his editorial boss! The latter had been appointed as the Chief Censor in the State, and the daily drill was to send him the news reports (this columnist was then a correspondent of The Indian Express in Bangalore) for clearance.

The Chief Censor had a battery of Deputy Superintendents of Police and Assistant Commissioners of Police, Inspectors and Information Department officials to vet all editorial matter, meant for publication in the following day's editions of all newspapers. This was the routine for 19 months — from June 26, 1975, to late January 1977. We had strict instructions that not a word should go to print without the clearance of the IGP and his men.

As a result, we had a van that would shuttle between our office and that of the Chief Censor through the day carrying typed copies of editorials, the opinion page pieces and news reports. The Censor would wade through this material, delete anything that even remotely showed the Indira Gandhi Government in poor light, and put his stamp and seal on it. Only copies cleared by him could be published. The articles and news reports would come back often in a mutilated form, but there was no way one could violate the orders of the Censors, because arrest under the dreaded Maintenance of Internal Security Act hung like the Sword of Damocles on our heads.

It will be difficult for young readers, who have grown up in a vibrant and often rumbustious democratic environment, to even visualise a situation when media content had to pass through a sieve called the Inspector General of Police! Imagine policemen in the editorial departments of newspapers and television news channels! This is just one of the hundreds of examples that one can offer of the tyrannical environment that prevailed during the Emergency, when a democratically-elected Government destroyed the Constitution and turned itself into a fascist regime.

Indira Gandhi's decision to become a dictator had its origins in an election petition filed against her by Raj Narain, accusing her of corrupt practices in the Rae Bareli constituency during the 1971 Lok Sabha poll. Justice Jagmohanlal Sinha of Allahabad High Court held the Prime Minister guilty of corrupt practices, declared her election to Parliament void, and barred her from contesting elections for six years.

Indira Gandhi's appeal against the judgement was heard by Justice VR Krishna Iyer. While everyone awaited Justice Iyer's decision, Indira gandhi used the interregnum to rig up support through rented crowds outside her 1 Safdarjung Road residence. Justice Iyer passed an order on the appeal on June 24 and granted her a "conditional stay", which allowed the Prime Minister to continue in office but barred her from participating in debates or voting in Parliament. Justice Iyer referred the matter to a larger Bench of the Court.

It was now clear to everyone, except Indira Gandhi and her supporters, that the position of the Prime Minister had become untenable. It made no sense for a Prime Minister to continue in office when she could neither speak nor vote in Parliament. The only honourable way out was to stay away from office until the Supreme Court disposed her appeal, but Indira Gandhi was unwilling to let go of power. Her resolve to stay put in office was reinforced by her son Sanjay Gandhi and their army of sycophants who hovered them.

The leaders of parties opposed to the Congress had been demanding Indira Gandhi's resignation ever since her indictment at the hands of Justice Sinha on June 12. Justice Iyer's "conditional stay" only reinforced this view, and Jayaprakash Narayan, Morarji Desai and other leaders addressed a mammoth rally on June 25 at the Ramlila Maidan in New Delhi, in which they demanded her ouster.

However, Indira Gandhi and her kitchen Cabinet had other plans. Siddhartha Shankar Ray came up with the most 'brilliant' idea to wreck the Constitution. He advised Indira Gandhi to declare an Internal Emergency under Article 352 of the Constitution, which enabled such action whenever there was "internal disturbance". The coterie around her argued that the Opposition agitation was preventing a duly elected Government from carrying out its duties.

She agreed, declared that the country needed "shock treatment" and approached President Fakhruddin Ali Ahmed to issue the proclamation. President Ahmed, known as a 'rubber stamp', instantly obliged, even though

the Prime Minister had not consulted her Cabinet. Indira Gandhi summoned her Cabinet at 6am the following day and 'informed' it of her decision. By then, there was such fear among her Ministers that not one of them had any questions or doubts about anything that had happened the previous night.

It did not take much time for Indians to realise that democracy had been snuffed out, because soon thereafter, the Congress Government arrested political leaders, activists and journalists under the Misa. The operation was swift because of sufficient preparatory work at the Prime Minister's residence. Jayaprakash Narayan, Morarji Desai, Atal Bihari Vajpayee, LK Advani, Madhu Dandavate, Ramakrishna Hegde, Arun Jaitley and hundreds of other political figures were packed off to jails.

A series of laws were promulgated and Constitution Amendments 39 to 42 were rammed through Parliament to destroy the last vestiges of democracy, strangle the judiciary and the media, and make Indira Gandhi the supreme leader who would be above the law. The core values in a democratic Constitution, like equality before the law and the right to life and liberty, were taken away. Congress leaders like CM Stephen intimidated the higher judiciary; VC Shukla threatened journalists and drew up a list of 'hostile' scribes who needed to be taught a lesson. Thousands of political activists, from the RSS to the socialists and the cadres of the CPI(M) were tortured in jails. Many, like Kerala engineering college student Rajan, were murdered by police.

India's fascist nightmare ended when the people trounced the Congress in the March 1977 Lok Sabha poll. Indira Gandhi had called the election on the basis of Intelligence Bureau reports that the people still loved her.

Forty years have gone by. Should we not put a closure to these memories? The answer is a firm "no", because there is no remorse among those who behaved so wickedly during the Emergency. Also, there has been no prayaschit. That is why one should never forget the Emergency and never forgive those who brought India face to face with fascism. Who knows when they will strike again!

Courtesy: Dailypioneer.com

Indira's speech

SUPPLEMENT

REGD. No. D-(2181)

THE MOTHERLAND

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

NEW DELHI, THURSDAY, JUNE 26, 1975

PRICE 15 PAISE

MIDNIGHT SWOOP ON OPPOSITION

JP, Morarji, Advani, Charan Singh among arrested

Chandrasekhar, Ram Dhan, Krishna Kant also held

By Our Special Correspondent

New Delhi, June 26

Shrimati Gandhi today invoked the hated Maintenance of Internal Security Act, MISA, to put behind bars in a pre-dawn swoop Lok Nayak Jayaprakash Narayan, Congress-O leader Morarji Desai, her own party colleagues Chandra Shekhar and Ramdhan, Bharatiya Lok Dal chairman Charan Singh and scores of other leaders of the Democratic Opposition who have been demanding her resignation following the adverse Court judgement in Allahabad and 'not-too-favourable verdict of the Supreme Court in her stay application.

Shri Narayan was woken up at around 2.30 a.m. from his room in the Gandhi Peace Foundation and then taken to Parliament Street police station in a van. By the time he was being taken Shri Chandrasekhar and Shri Mohan Dharia and Shri Krishna Kant reached the ... building. They too accompanied Shri Narayan to the police station, where Shri Chandrasekhar, a member of the Working Committee of the ruling party, was also under arrest.

Motherland Editor arrested

By Our Special Correspondent

NEW DELHI, June 25. Shri K. R. Malkani, Editor of The Motherland, was arrested in the early hours of Thursday.

According to a message received from his wife at 1.00 a.m., Shri Malkani was taken away from his New Rajinder Nagar residence to the police station in the same locality.

Shri Jayaprakash Narayan

President declares emergency

Students' call for Bihar Bandh

JP, Morarji taken to Sohna

War against people: Dhadda

Leaders under arrest

Shri Raj Narain

SHRI MORARJI DESAI

Shri A. B. Vajpayee and Shri L.K. Advani

55 Opposition leaders held in Punjab, Haryana

SHRI PILOO MODY

Wave of shock, indignation sweeps Capital

Cong-I MP's appeal

CMs told to remain in Delhi

SHRI KRISHNA KANT

SHRI RAM DHAN

Fascist forces overtake democracy

Indira summons Cabinet meet at residence

Leaders condemn arrests

SHRI CHANDRASHEKHAR

THE MOTHERLAND

NEW DELHI, THURSDAY, JUNE 26, 1975

THOUGHT FOR TODAY

The fight is lost—and he knows it is lost—and yet he is fighting still. — E. J. APPLETON

A lame duck

When the Allahabad judgment came, it was understood that Shrimati Indira Priyadarshini Nehru Gandhi would resign. But she didn't.

Earlier this week she sought an absolute stay of the High Court judgment, but the Supreme Court gave her only conditional stay. Once again it was expected that she would resign. And once again she has not.

Today it is assumed that if the Supreme Court upholds the High Court judgment, she will resign. But this assumption seems to go counter to public experience with her. It would seem that she would rather supersede the whole Supreme Court and suspend the Constitution, rather than resign—should the verdict go against her. She is like the cricketer who would hit the bowler with his bat for bowling him clean.

[illegible]

Banking disservice

[illegible]

90 hours to Indira

[illegible]

[illegible caption]

Mammoth rally demands Indira's resignation

By Our Staff Reporter

NEW DELHI, June 25.

Shri Jayaprakash Narayan today called upon the Congress-I M.Ps. to rise to the occasion and demand the resignation of Shrimati Indira Gandhi to protect democracy and moral values in this time of national crisis.

[illegible]

PROVEN LIAR

[illegible]

JAYAPRAKASH

[illegible]

APPEAL TO ARMY

[illegible]

NANA DESHMUKH

[illegible]

JP's appeal to Chief Justice

[illegible]

Cong-I MPs will write to Indira to step down

[illegible]

Rickshawpullers' 'solidarity'

By Our Staff Reporter

[illegible]

Gujarat to order pr… against Chimanbh…

GANDHINAGAR, June 25.

[illegible]

National Press again demands Indira Gandhi's resignation

[illegible]

THE INDIAN EXPRESS

[illegible]

Indira has no moral right to stay: Bahubh…

[illegible]

Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation

https://web.facebook.com/spmrfoundation

https://twitter.com/spmrfoundation